Health and Well-Being of Children and Adolescent *https://www.kdpublications.in*
ISBN: 978-93-94570-01-6

7. Child Growth and Development

डॉ॰ जनक रानी

पद – प्राचार्या एम. एम. शिक्षण महाविद्यालय,
फतेहाबाद (हरियाणा).

माननीय व्यवहार जटिल तथा विभिन्न है। अरस्तू के समय से ही व्यक्ति मानव व्यवहार को समझने तथा इसकी व्याख्या करने में रूचि ले रहे है। यह दर्शनशास्त्री थे जिन्होनें यह विषय लिया तथा मानव व्यवहार के कारण खोजने का प्रयास किया। मनोविज्ञान का जन्म दर्शन शास्त्र से हुआ। मनोविज्ञान के ज्ञान का – चिकित्सा, कानून, वाणिज्य, व्यापार, समाज कार्य, शिक्षा सामाजिक सम्बन्ध, नर्सिंग तथा माननीय उद्यम के अन्य क्षेत्रो में शैक्षिक तथा प्रोद्यौगिक महत्त्व है।

शिक्षा मनोविज्ञान की वह शाखा है जिसमें इस बात का अध्ययन किया जाता है कि मानव शैक्षिक वातावरण में सीखता कैसे है? शैक्षिक क्रियाकलाप अधिक प्रभावी कैसे बनाए जा सकते है? शिक्षा मनोविज्ञान दो शब्दो के योग से मिलकर बना है "शिक्षा और मनोविज्ञान"। अतः इसका अर्थ यह है कि शिक्षा सम्बन्धी मनोविज्ञान। यह मनोविज्ञान का व्यवहारिक रूप है और शिक्षा की प्रक्रिया में मानव व्यवहार का अध्ययन करने वाला विज्ञान है। शिक्षा के सभी पहलूओं जैसे शिक्षा के उद्देश्य, शिक्षण विधि, पाठ्यक्रम, मूल्याकंन, अनुशासन आदि को मनोविज्ञान ने प्रभावित किया है।

शिक्षा मनोविज्ञान से तात्पर्य शिक्षण व सीखने की प्रक्रिया को सुधारने के लिए मनोविज्ञानिक सिंद्धातों का प्रयोग करने से है। शिक्षा मनोविज्ञान शैक्षिक परिस्थितियों में व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन करता है।

इस प्रकार शिक्षा मनोविज्ञान में व्यक्ति के व्यवहार, मानसिक क्रियाओं एवं अनुमानों का अध्ययन शैक्षिक परिस्थितियों में किया जाता है। शिक्षा मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की वह शाखा है जिसका ध्येय शिक्षा की प्रभावशाली तकनीको को विकसित करना तथा अधिगमकर्ताओं की योग्यताओं व अभिरूचियों का मूल्याकंन करना है। यह व्यवहारिक मनोविज्ञान की शाखा है जो शिक्षण व सीखने की प्रक्रिया को सुधारने में प्रयासरत है।

भारत में शिक्षा का अर्थ ज्ञान से लगाया जाता है। गाँधी जी के अनुसार "शिक्षा का तात्पर्य व्यक्ति के शरीर, मन व आत्मा के समुचित विकास से है।" मनोविज्ञान के व्यवहार के विज्ञान के रूप में स्पष्ट करने के लिए कुछ परिभाषाएं इस प्रकार से हैः–

- क्रो एवं क्रो ने लिखा है कि – "संक्षिप्त रूप से मनोविज्ञान मानव व्यवहार और मानवीय सम्बन्धों का अध्ययन करता है।"

- मन लिखते है – "आजकल मनोविज्ञान का सम्बन्ध व्यवहार को वैज्ञानिक छानबीन से है।"
- स्किनर ने कहा है – "मनोविज्ञान, व्यवहार व अनुभवों का विज्ञान है।"
- वुडवर्थ के अनुसार – "मनोविज्ञान व्यक्ति की सभी क्रियाओ के , उसके वातावरण के सम्बन्ध में, अध्ययन का विज्ञान है।"
- पिल व सरी ने मनोविज्ञान की परिभाषा देते हुए कहा है कि – "मनोविज्ञान को अत्याधिक सन्तोषजनक रूप में मानव व्यवहार के विज्ञान के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।"

वास्तव में केवल बाहरी व्यवहार ही जीव के सम्पूर्ण व्यवहार के अर्थ को स्पष्ट नही करता। यह तो उसके व्यवहार का अंगमात्र है। उसके व्यवहार में संचेत मन की सभी क्रियाओ के अतिरिक्त उसके अवचेतन तथा अचेत मन की गति की तथा सभी प्रक्रियाएं शामिल होती है। व्यवहार में इन्द्रिय जनित क्रियाएं ही नही, बल्कि उच्च मानसिक क्रियाएं भी शामिल है।

अतः कहा जा सकता है कि –

- मनोविज्ञान सभी व्यक्तियों व जीवधारियों के व्यवहार का विज्ञान है।
- मनुष्य के व्यवहार के अध्ययन में उसकी सभी क्रियाएं – उच्च मानसिक प्रक्रियाएं, अवचेतन तथा अचेत मन से संचालित होने वाली सभी क्रियाएं शामिल रहती है।
- मनोविज्ञान समस्त प्राणियों के व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन उनके वातावरण के सन्दर्भ में करता है।

7.1 मनोविज्ञान की आवश्यकता:

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि शिक्षा मनोविज्ञान का ज्ञान एक बालक के लिए अति अनिवार्य है। शिक्षा मनोविज्ञान निम्न कारणों से आवश्यक हैः–

1. **बालक के स्वभाव का ज्ञान प्रदान करने हेतू** – कक्षा कक्ष में विभिन्न प्रकार के बालक होते है जो अलग–अलग स्वभाव के होते है। एक बालक को समझाने के लिए अध्यापक को उसके स्वभाव की जानकारी होनी चाहिए।
2. **बालक को अपने वातावरण से समाजस्य स्थापित करने के लिए** – कक्षा कक्ष के वातावरण का बालक पर अति प्रभाव पड़ता है। कक्षा कक्ष में अलग–अलग तरह के सहपाठी होते है। सब बच्चों को उस वातावरण में समाजस्य बिठाना पड़ता है। समाजस्य में मनोविज्ञान अपनी भूमिका अदा करता है।
3. **शिक्षा के उद्देश्य, स्वरूप और प्रयोजनो से परिचित करना** – मनोविज्ञान का ज्ञान शिक्षक तथा विद्यार्थी, दोनो को होना जरूरी है। मनोविज्ञान का ज्ञान अपने

विद्यार्थियों को शिक्षा के उद्देश्य, स्वरूप और प्रयोजनो से भलीभाँति परिचित करवाता है।

4. **सीखने और सिखाने के सिन्द्धातों तथा विधियों से अवगत कराना** – शिक्षा में सीखने व सिखाने में विद्याथियों व अध्यापकों की भूमिका होती है। मनोविज्ञान यह बताता है कि बालकों को ज्ञान देने के लिए कौन–कौन सी शिक्षण विधियां प्रयोग में लानी चाहिए। किस विधि का प्रयोग करे कि शिक्षण रूचिदायक हो जाए।
5. **संवेगो के नियन्त्रण और शैक्षिक महत्त्व का अध्ययन** – किशोरावस्था में बालक का अपने संवेगो पर नियन्त्रण होना जरूरी है क्योंकि किशोरावस्था तूफान व सन्घर्ष की अवस्था होती है। इस अवस्था में शिक्षा के महत्त्व का अध्ययन भी जरूरी है। मनोविज्ञान की सहायता से बालक के संवेगो को नियन्त्रण में लाया जा सकता है।
6. **चरित्र निर्माण की विधियों व सिन्द्धातों से अवगत कराना** – मनोविज्ञान की सहायता से बालक के चरित्र को आसानी से समझा जा सकता है। चरित्र निर्माण बालक के व्यक्तित्व विकास में सहायता करता है।
7. **मूल्यांकन करने के लिए** – विद्यालय में भिन्न–भिन्न विषयों को पढाया जाता है। किस विषय में बालक कमजोर है, मनोविज्ञान की सहायता से विभिन्न युक्तियों को प्रयोग करके विषय का मूल्यांकन किया जा सकता है।
8. **वैज्ञानिक विधियों का ज्ञान प्रदान करना** – शिक्षा मनोविज्ञान से तथ्यों व सिन्द्धातों की जानकारी के लिए प्रयोग की जाने वाली विभिन्न वैज्ञानिक विधियों का ज्ञान प्रदान किया जाता है।

7.2 बालक की वृद्धि व विकास (Child Growth and Development):

मानव विकास का अध्ययन शिक्षा मनोविज्ञान का महत्त्वपूर्ण अंग है। एक शिक्षक को बालक की अभिवृद्धि के साथ–साथ उसमें होने वाले विभिन्न प्रकार के विकास तथा विशेषताओं का ज्ञान होना आवश्यक है।

अभिवृद्धि और विकास का अर्थ समझने के लिए हमें उसके अन्तर को समझ लेना आवश्यक है। अभिवृद्धि और विकास की प्रक्रियाएं उसी समय आरम्भ हो जाती है, जिस समय से बालक का गर्भ में आता है।

ये प्रक्रियाएं, उनके जन्म के बाद चलती रहती है। फलस्वरूप वह विकास की विभिन्न अवस्थाओं में से गुजरता है।

जिससे उसका शारीरिक, मानसिक, सामाजिक आदि विकास होता है। अतः हरलॉक के शब्दो में "विकास, अभिवृद्धि तक सीमित नही है।

इसके बजाए, इसमें प्रौढावस्था के लक्ष्य की ओर परिवर्तनों का प्रगतिशील क्रम निहित रहता है। विकास के परिणामस्वरूप व्यक्ति में नवीन विशेषताएं और नवीन योग्यताएं प्रकट होती है।"

विकास व अभिवृद्धि में अन्तर

अभिवृद्धि	विकास
1. यह विशेष आयु तक चलने वाली प्रक्रिया है।	1. जन्म से मृत्यु तक चलने वाली प्रक्रिया है।
2. परिणात्मक परिवर्तन की अभिव्यक्ति	2. गुणात्मक तथा परिणात्मक पक्षों की अभिव्यक्ति
3. वृद्धि, विकास का एक चरण है	3. विकास में वृद्धि भी शामिल है
4. परिवर्तनों को देखा व मापा जा सकता है।	4. परिवर्तनों को अनुभव किया जा सकता है, नापा नही जा सकता है।
5. केवल शारीरिक परिवर्तन को प्रकट करता है।	5. सम्पूर्ण पक्षों के परिवर्तनों को सयुंक्त रूप से परिवर्तित करता है।

7.3 Stages of Growth and Development:

वृद्धि और विकास की कहानी माँ के गर्भ में आने के साथ–साथ शुरू हो जाती है। वह भी माँ के गर्भ में एक पौधे की तरह छोटे से अंकुर के रूप में अपना जीवन आरम्भ करता है और धीरे–धीरे वृद्धि और विकास को प्राप्त होता रहता है।

विकास की अवस्था	जीवन अवधि
1. गर्भकाल	1. गर्भकाल से लेकर जन्म तक
2. शिशुकाल	2. जन्म से लेकर 3 वर्ष तक
3. बाल्यकाल	3. 4 वर्ष से 12 वर्ष तक
4. किशोरावस्था	4. 13 वर्ष से 19 वर्ष तक
5. प्रोढावस्था	5. 20 वर्ष से मृत्यु तक

उपरोक्त अवस्थाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि पहली व अंतिम अवस्था में अध्यापक से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नजर नही आता।

7.4 वृद्धि व विकास के विभिन्न पहलू (Various aspects of Growth & Development):

एक बालक के सर्वागीण विकास में हमें विभिन्न पहलूओं का अध्ययन करना चाहिए।

1. शारीरिक विकास
2. ज्ञानात्मक विकास
3. संवेगात्मक विकास
4. नैतिक विकास
5. सामाजिक विकास
6. भाषात्मक विकास

- व्यक्ति के शारीरिक विकास में उसके शरीर के बाह्य एवं आंतरिक अव्यवों का विकास शामिल है।
- इसमें सभी प्रकार की मानसिक शक्तियां जैसे सोचने विचरने की शक्ति, कल्पना शक्ति, निरीक्षण शक्ति, स्मरण शक्ति आदि का विकास होता है।
- इसमें विभिन्न संवेगों की उत्पति, उनका विकास तथा इन संवेगों के आधार पर संवेगात्मक व्यवहार का विकास शामिल है।
- इसके अंर्तगत नैतिक भावनाओं, मूल्यों तथा चरित्र सम्बन्धी विशेषताओं का विकास होता है।
- बच्चा प्रारम्भ में असामाजिक प्राणी होता है। उसमें उचित सामाजिक गुणों का विकास कर समाज के मूल्य व मान्यताओं के अनुसार व्यवहार करना सिखाना सामाजिक विकास के अंर्तगत होता है।

7.5 विकास अवस्था (Stages of Development):

शैशवावस्था – यह अवस्था बालक का निर्माण काल है। फ्रायड के शब्दों में ''मनुष्य को जो कुछ बनना होता है, वह चार पाँच वर्षों में बन जाता है।''

आधुनिक शताब्दी को 'बालक की शताब्दी' कहे जाने का कारण यह है कि इस शताब्दी में मनोवैज्ञानिकों ने बालक और उसके विकास की अवस्थाओं के सम्बन्ध में अनेक गम्भीर व विस्तृत अध्ययन किए है। इन अवस्थाओं में शैशवावस्था सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इस अवस्था में उसका जितना ही अधिक निरीक्षण और निर्देशन किया जाता है, उतना ही अधिक उत्तम उसका विकास और जीवन होता है।

7.5.1 शैशवावस्था की विशेषताएं:

- शारीरिक विकास में तीव्रता
- मानसिक क्रियाओं की तीव्रता
- सीखने की प्रक्रिया में तीव्रता
- कल्पना की सजीवती
- दूसरो पर निर्भरता
- आत्मप्रेम की भावना
- नैतिकता का अभाव
- मूलप्रवृतियों पर आधारित व्यवहार
- सामाजिक भावना का विकास
- दूसरे बालकों में रूचि या अरूचि
- संवेगों का प्रदर्शन
- काम प्रवृति
- दोहराने की प्रवृति
- जिज्ञासा की प्रवृति
- अनुकरण द्वारा सीखने की प्रवृति
- अकेले व साथ खेलने की प्रवृति

शैशवावस्था की विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षा आयोग ने शिशु शिक्षा के विस्तार की सिफारिस करते हुए लिखा है – "तीन और दस वर्ष के बीच के बालक के शारीरिक संवेगात्मक और मानसिक विकास के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। अतः हम पूर्व–प्राथमिक शिक्षा के अधिक से अधिक सम्भव विस्तार की आवश्यकता को स्वीकार करते है।"

बाल्यावस्था – शैशवावस्था के बाद बाल्यावस्था का आरम्भ होता है। यह अवस्था बालक के व्यक्तित्व निर्माण की होती है। इस अवस्था में विभिन्न आदतो, व्यवहार, रूचि व इच्छाओं के प्रतिरूपों का निर्माण होता है। कोल व ब्रूस ने बाल्यावस्था को अनोखा काल बताते हुए लिखा है – "वास्तव में माता पिता के लिए बाल विकास की इस अवस्था को समझना कठिन है।"

7.5.2 बाल्यावस्था की विशेषताए:

- शारीरिक व मानसिक स्थिरता
- मानसिक योग्यताओं में वृद्धि
- जिज्ञासा की प्रबलता
- वास्तविक जगत के सम्बन्ध
- रचनात्मक कार्यो में आन्नद
- सामाजिक गुणों का विकास
- नैतिक गुणों का विकास
- बहिर्मुखी व्यक्तित्व का विकास
- संवेगों का दमन व प्रदर्शन
- संग्रह करने की प्रवृति
- निरूद्देश्य भ्रमण की प्रवृति
- काम प्रवृति की न्यूनता
- सामूहिक प्रवृति की प्रबलता
- सामूहिक खेलो में रूचि
- रूचियों में परिवर्तन

फ्रायड और उसके अनुनायियों ने बाल्यावस्था को बालक का निर्माणकारी काल मानकर इस अवस्था को अत्याधिक महत्व दिया है। उनका कहना है कि इस अवस्था में बालक सामाजिक व्यक्तित्व और शिक्षा सम्बन्धी आदतो एवं व्यवहार के प्रतिमानो का निर्माण कर लेता है। उनको रूपान्तरित करना कठिन हो जाता है। इस दृष्टि से प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने वाले शिक्षको पर बालको का निर्माण करने का महान उत्तरदायित्व है।

किशोरावस्था – किशोरावस्था बड़े संघर्ष, तनाव, तूफान और विरोध की अवस्था है। बाल्यकाल के समापन के बाद किशोरावस्था आरम्भ हो जाती है। इस अवस्था को तूफान व संवेगों की अवस्था कहा जाता है।

7.5.3 किशोरावस्था की विशेषताएं:

- शारीरिक विकास
- मानसिक विकास
- धनिष्ठ व व्यक्तिगत मित्रता
- व्यवहार में विभिन्नता

- स्थिरता व समायोजन का अभाव
- स्वतन्त्रता व विद्रोह की भावना
- काम शक्ति की परिपक्वता
- समूह का महत्त्व
- रूचियों में परिवर्तन व स्थिरता
- समाज सेवा की भावना
- ईश्वर व धर्म में विश्वास
- जीवन दर्शन का निर्माण
- अपराध प्रवृति का विकास
- स्थिति व महत्त्व की अभिलाषा
- व्यवसाय का चुनाव

किशोरावस्था जीवन का सबसे कठिन व नाजुक काल है। इस अवस्था में बालक का झुकाव जिस ओर जाता है, उसी दिशा में वह जीवन में आगे बढता है। महात्मा गाँधी ने अपने जीवन में सत्य का अनुसरण करने की प्रतिज्ञा इसी अवस्था में की थी।

मनोवैज्ञानिकों द्वारा बहुत समय तक उपदेश देने के बाद यह बात व्याप्क रूप से स्वीकार की जाने लगी कि शैक्षिक दृष्टिकोण से किशोरावस्था का अत्याधिक महत्त्व है।

7.6 बालक का मानसिक विकास:

मानसिक विकास स्वतन्त्र रूप से कुछ नही है। मानसिक विकास से अभिप्राय ज्ञान भण्डार में वृद्धि तथा उसके उपयोग से है। जन्म के समय शिशु का मस्तिष्क पूर्णतया अविकसित होता है। वह अपने वातावरण एवं अपने आसपास के व्यक्तियों के बारे में कुछ नही समझता। इस सम्बन्ध में हरलॉक ने लिखा है – "क्योंकि दो बालको में समान मानसिक योग्यताएं या समान अनुभव नही होते, इसलिए दो व्यक्तियों में किसी वस्तु या परिस्थिति का समान ज्ञान होने की आशा नही की जा सकती।"

7.6.1 मानसिक विकास के पक्ष:

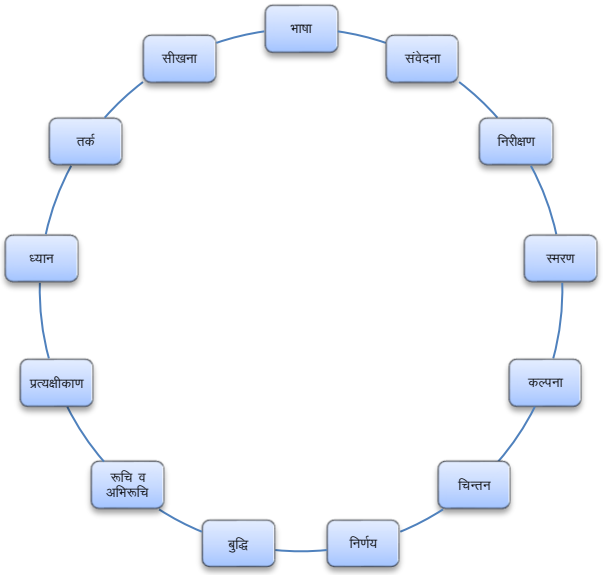

7.6.2 शैशवा अवस्था में मानसिक विकास:

सोरेनसन के अनुसार – "जैसे–जैसे शिशु प्रतिदिन, प्रतिमास, प्रतिवर्ष बढता जाता है, वैसे–वैसे उनकी शक्तियों में परिवर्तन होता जाता है।

पहला वर्ष	शिशु चार शब्द बोलता है व अनुकरण बनता है।
दूसरा वर्ष	दो वाक्यो का प्रयोग करता है। वर्ष के अन्त तक 100 से 200 शब्दो का भण्डार हो जाता है।
तीसरा वर्ष	शिशु पूछे जाने पर अपना नाम बताता है और सीधी और लम्बी रेखा देखकर वैसी ही रेखा खींचता है।
चौथा वर्ष	शिशु गिनती गिन लेता है, छोटी व बड़ी रेखाओं का अन्तर कर लेता है।
पाँचवा वर्ष	शिशु हल्की व भारी वस्तुओं के अन्तर को समझ लेता है। 10–11 शब्दों के वाक्यों को दोहराने लगता है।

7.6.3 बाल्यावस्था में मानसिक विकास:

क्रो व क्रो के अनुसार "जब बालक लगभग 6 वर्ष का हो जाता है, तब उसकी मानसिक योग्यताओं का लगभग पूर्ण विकास हो जाता है।"

छठा वर्ष	बालक बिना हिचके 13–14 तक गिनती सुना देता है। दिखाए हुए चित्र पर बनी वस्तुओं का वर्णन करता है।
सातवां वर्ष	बालक में दो वस्तुओं का अन्तर करने की शक्ति का विकास होता है। वह जहाज व कार में क्या अन्तर है, बता देता है।
आठवां वर्ष	बालक छोटी–छोटी कहानियों को अच्छी तरह दोहराने, प्रतिदिन की साधारण समस्याओं का समाधान करने की योग्यता होती है।
नवाँ वर्ष	बालक को दिन, समय, तारीख व वर्ष का ज्ञान हो जाता है। वह समान्य शब्दो का प्रयोग करने लगता है।
दसवां वर्ष	बालक 3 मिनट में 60–70 शब्द बोल लेता है, उसे जीवन के नियम, सूचनाओं आदि का ज्ञान हो जाता है।
ग्याहरवां वर्ष	बालक में तर्क, जिज्ञासा और निरीक्षण की शक्तियों का प्र्याप्त विकास हो जाता है।
बाहरवां वर्ष	बालक में तर्क और समस्या समाधान की शक्ति का अधिक विकास हो जाता है।

7.6.4 किशोरावस्था में मानसिक विकास:

वुडवर्थ के शब्दों में "मानसिक विकास 15 से 20 वर्ष की आयु में अपनी उच्चतम सीमा पर पहुँच जाता है।" इस अवस्था की निम्न विशेषताएं है –

1. बुद्धि का अधिकतम विकास

2. मानसिक स्वतन्त्रता

3. मानसिक योग्यताएं

4. ध्यान

5. चिन्तन शक्ति

6. तर्क शक्ति

7. कल्पना शक्ति

8. रूचियों की विविधता

9. स्मरण शक्ति का विकास

10. रूचियों में परिवर्तन

11. आवाज में परिवर्तन

12. शारीरिक विकास

संक्षिप्त रूप से यह कहा जा सकता है कि एक अध्यापक को अपने बालको को समझने के लिए मानसिक विकास के क्रम को समझना अति अनिवार्य है। बालक की विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले मानसिक विकास एक सतत् प्रक्रिया है। शैशव से किशोर होने तक बालको के मानसिक विकास की प्रक्रिया में अनेक परिवर्तन होते है। चिन्तन, तर्क व कल्पना का विकास होता है। समायोजन की क्षमता उत्पन्न होती है। एकाग्रता का विकास होता है। विचार शक्ति के कारण बालक में गुण–दोष विवेचन करने की क्षमता विकसित होने लगती है। अतः मानसिक विकास सही दिशा में होना चाहिए। इसलिए शिक्षक का दायित्व ओर बढ जाता है।